



# TRIBE

## ट्राईब

QUARTERLY JOURNAL IN  
HINDI AND ENGLISH  
त्रैमासिक पत्रिका

Vol. 33

No. 1-4

(January - December)

2001

जनजाति कला एवं संस्कृति विशेषांक



M. L. VERMA TRIBAL RESEARCH AND TRAINING INSTITUTE  
ASHOK NAGAR, UDAIPUR - 313001

माणिक्य लाल वर्मा आदिम जाति शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान  
अशोक नगर, उदयपुर - 313001



## भीलों में गवरी

डॉ. महेन्द्र भानावत \*

गवरी उदयपुर खंड के भीलों का मेरू-नाट्य है। इसका कथानक शिव को केन्द्र बनाकर संघटित किया गया है। इसमें शिव का जो रूप मिलता है वह अत्यन्त विचित्र है। शिव तथा भस्मासुर का प्रतीक राईबूड़िया, मोहिनी तथा पार्वती की प्रतिमूर्ति दोनों राइयां, कुटकड़िया तथा पाट भोपा; ये पाँच गवरी के प्रमुख नायक होते हैं जो मांजी कहलाते हैं।

दूसरे जितने भी अभिनेता होते हैं उन्हें खेल्ये कहते हैं।

गवरी में जो दृश्य अभिनीत किए जाते हैं वे खेल, भाव अथवा सांग के नाम से पुकारे जाते हैं। कुटकड़िया इस नाट्य का सूत्रधार होता है जो प्रत्येक खेल के पूर्व उसकी संक्षिप्त कथा सुनाता है। इसे उस खेल का झामटड़ा सुनाना कहते हैं। इससे आने वाले खेल तथा उसकी कथा की जानकारी दर्शकों को पहले से हो जाती है। ये झामटड़े गवरी के मूल भारत के छोटे-छोटे अंश होते हैं।

गवरी के मूल में नृत्य की प्रधानता रही है। नृत्य की यह प्रधानता आज भी इसमें देखी जाती है। इसी प्रधानता के कारण गवरी को ‘गवरी का नाच’ भी कहा जाता है। जब यह नृत्य अपने विकास की मंजिल को पहुंच गया तब इसमें नाना स्वांग—स्वरूपों की रचना आरम्भ हुई। इसके आधार पर कथा—तत्व का गठन हुआ और गीति—तत्व ने जोर पकड़ा। गाँव का कोई चौराहा अथवा खुला आंगन ही गवरी का रंगमंच होता है। भाद्र महीने से प्रारम्भ होकर पूरे सवा महीने तक प्रतिदिन प्रातः 9.00 से 6.00 बजे तक, जहाँ—जहाँ गवरी वाले गाँव की बहिन—बेटियाँ ब्याई हुई होती हैं, इसके प्रदर्शन आयोजित किए जाते हैं। प्रत्येक भील—परिवार का सदस्य इसमें भाग लेना अपना कर्तव्य समझता है। फलतः गवरी में अभिनेताओं की संख्या चालीस—पचास से लगाकर नब्बे—सौ तक देखने को मिलती है।

भारतवर्ष में कहीं ऐसा नाट्य देखने को नहीं मिलेगा जो इतनी लम्बी अवधि तक, पात्रों के इतने बड़े समूह के साथ, विविध गाँवों में इतने सुव्यवस्थित ढंग से दिन भर प्रदर्शित होता हो।

### शिव और विकास :

शिव तथा भस्मासुर की कथा गवरी के उद्भव की मूल कथा कही जाती है। भीलों में प्रथमित एक दंतकथा के अनसार महादेव शंकर ने बारह बरस तक कैलाश पर्वत पर

कठोर तपस्या की। इस दौरान उनकी सेवा में एक राक्षस रहा, जिसका नाम भस्मासुर था। यह बड़ा भक्त था जो शिवजी की अदृष्ट भक्ति में रहता था जैसे उनका नांदिया था। बारह बरस पूरे होने पर शिवजी की तपस्या पूरी हुई। वे भस्मासुर की सेवा से बड़े प्रसन्न हुए। उसे मनवांछित वर मांगने को कहा।

भस्मासुर ने सोचा कि भोलेनाथ के पास कोई भस्मी कड़ा है। उसमें इतनी खासियत है कि वह जिसके सिर पर फिराया जाय वह भस्म हो जाय अतः उसी कड़े की मांग कर बैठा। महादेव ने कड़ा देते हुए कहा—‘यह लो, तुम इसे पहन लो। जिस किसी के सिर पर अपना हाथ रखोगे वह भस्म हो जाएगा।’

राक्षसी वृत्ति होने के कारण भस्मासुर से अपने—पराये का भाव भी जाता रहा और उसकी नियत में यह फर्क आया कि वह पार्वती पर ही मोहित हो उसी को प्राप्त करने की सोच बैठा फलस्वरूप शिवजी को भस्म करने के लिए उन्हीं के सिर पर अपना हाथ फिराना चाहा। यह देख शिवजी भागे। उनके पीछे—पीछे भस्मासुर भी दौड़ा। ऐसे दौड़ते देख पार्वती ने मधुमक्खी का रूप धारण कर शिवजी की जटा में अपने को छिपा लिया ताकि उसके शील की रक्षा हो सके।

इधर शिवजी को संकट में देख विष्णु ने पार्वती का रूप धारण किया और अपने हाथ में खाने की पोटली लिए भस्मासुर के सामने आए। भस्मासुर बड़ा प्रसन्न हुआ और विवाह का प्रस्ताव रखा। छद्मवेशी पार्वती बोली—‘मैं भोजन करने से पहले शिवजी के कंधे पर बैठकर उन्हें खूब नचाती हूँ। तुम भी यदि मेरी यह बात स्वीकार करो तो मैं तुम्हें पतिरूप में स्वीकार कर सकती हूँ।’

कामातुर भस्मासुर ने पार्वती की यह शर्त मान ली। इस पर वह उसके कंधे पर जा बैठी। भस्मासुर नाचने लगा। उसे नाचने में मगन देख पार्वती ने उसका हाथ उसी पर घूमा दिया जिससे भस्मासुर भस्म हो गया। तभी विष्णु अपने असली रूप में प्रगट हुए। भस्मासुर ने उनसे अपना नाम अमर रहने की विनती की।

कहते हैं तब विष्णु ने वनवासियों को शिव—भस्मासुर की लीला करने का आदेश दिया। तब से वनवासी भील समुदाय ने शिव—भस्मासुर के रूप में एक अजीब बूड़िया नायक की रचना की और नायिका रूप में एक विष्णु रूप पार्वती और एक शिवजी की अर्धांगिनी पार्वती के रूप में दो पार्वतियाँ तैयार कीं। चूँकि यह खेल बड़े हौसले, साहस और करामात का था अतः भीलों ने महिला समुदाय को इससे दूर ही रखा। इतना दूर कि वह इसे देख भी नहीं सके ताकि राक्षस भस्मासुर बिंगड़ भी जाए तो उनकी औरतों के साथ अनिष्ट नहीं कर सके।

तब से देवी पार्वती के नाम पर गौरज्या का यह गौरी—गवरी—मंडल होता आ रहा है। इसमें अन्य सभी खेल करने वाले महादेवजी के गण हैं। भस्मासुर में शिवत्व बना रहे इसलिए उसे भगवा चोला धारण कराया और मुख पर भीमकाय मुखौटा। गवरी का बूड़िया

शिव बड़ा समन्वयकारी है। यह समन्वय जीव और जगत का, जड़ और चेतन का, इन्द्रियों और विषेक का ही नहीं, इच्छा और कर्म, नृत्य और नाटक, स्वांग और लीला तथा गीत और संवाद का भी है। इहलोक परलोक का भी है। लौकिक अलौकिक का भी है। अपने भोपे के माध्यम से देवी गौरज्या—गवरज्या गवरी—मंडल में हर समय बनी रहती है। वह कभी जोर की हाँक दिए प्रकट होती है तो कभी उसकी पीठ पर सांकल की मार दिए गुरस्सा देती है। कभी मध्यूरपंख की फटकार द्वारा शुद्ध पर्यावरण देती पाई जाती है। वह जहां गवरी में शुद्धता बनाए रखती है वहां उस पर आने वाली विपत्ति का भी शमन किए रहती है।

### पुराणों में गवरी—कथा के सूत्र :

भस्मासुर की यह कथा पुराणों में विभिन्न रूपों में मिलती है। उनमें से एक कथा इस प्रकार है—

शकुनी असुर के पुत्र वृकासुर ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन त्रिदेवों में शिवजी को शीघ्र प्रसन्न होने वाला समझ, उनकी आराधना की और यह वर प्राप्त किया कि जिसके ऊपर वह हाथ रखे, वही भस्म हो जाए। शिवजी के इस वर से उन्मत्त हो वृकासुर स्वर्ग, मृत्यु तथा पाताल तीनों लोकों में बड़ा उपद्रव मचाने लगा। यहां तक कि स्वयं शिवजी के मस्तक पर हाथ रखकर उन्हें भस्म करके पार्वती का अपहरण करने की दुर्भावना भी उसमें जागृत हो उठी। यह देखकर विष्णु मोहिनी रूप धारण कर उसके सम्मुख आ खड़े हुए और उन्होंने अपने कटाक्षादि मधुर भावों से उसे मोह लिया। फलतः वह भी उनका अनुकरण करता हुआ नाचने लगा। नाचते—नाचते उसका हाथ उसके सिर पर चला गया और वह वहीं भस्म हो गया। यही वृकासुर आगे जाकर भस्मासुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

### लोकजीवन में गवरी—कथा का स्वरूप :

भस्मासुर की याद में गवरी के सामूहिक नृत्य में आगे जाकर ऊनवास में घटित नौ लाख देवियों की बड़ल्याहींदवा सम्बन्धी घटनाएं जुड़ गईं और वे ही गवरी की प्रमुख आधार बन गईं। लोकजीवन में ये घटनाएं विविध रूपों में सुनने को मिलती हैं। उनके अनुसार एक घटना इस प्रकार कही जाती है—

एक समय देवी अम्बाव को स्वप्न आया जिसमें उसे विशाल वटवृक्ष तथा नवरात्रि पूजन का दृश्य दिखाई दिया। मृत्युलोक में पहले उसने ये दृश्य कभी नहीं देखे थे। इसलिए उन्हें देखने की उत्कण्ठा जगी। वटवृक्ष तो राजा वासुकि की बाड़ी में था। अतः किसी ऐसी देवी की खोज प्रारम्भ हुई जो पाताल में जाकर वासुकि की बाड़ी से वटवृक्ष ला सके। संयोग से रामू तथा केवल ये दो देवियां इसके लिए तैयार हो गईं। उन्होंने प्रण किया कि— “जब तक वटवृक्ष नहीं लाएंगी; देवलऊनवा नहीं जाएंगी; हिमालय जाकर हाड़ गालेंगी नहीं तो काशी में करवत लेंगी।” दोनों देवियां बहुत भटकीं मगर उन्हें सफलता नहीं मिली। फलस्वरूप वे मरने निकलीं। देवी अम्बाव ने उन्हें ऐसा करने से रोका।

उसकी बाड़ी में प्रतिदिन एक भंवरा आता था। यह बड़ा जबर्दस्त था। बारह मन उसका भार था तथा तेरह कोस तक उसकी गुंजार सुनाई देती थी। एक दिन अम्बाव ने भंवरी का रूप धारण किया और बाड़ी में जाकर बैठ गई। नित्य की तरह भंवरा वहां आया। देवी ने फंदा डाल उसे आने—जाने का भेद बताने को कहा पर उसने भेद नहीं दिया। भंवरा बड़ा छटपटाया। अन्त में उसने वासुकि की बाड़ी जाने का भेद दिया और मार्ग बताया।

देवी ने वहां से प्रस्थान किया और देवलऊनवा पहुंची। सब देवियों को एकत्र किया और पाताल में वासुकि की बाड़ी में जाने का निश्चय किया। जाते समय देवी कूँड़ी में दूध भर गई और कह गई— ‘इसका दूध कभी सूखेगा नहीं; यदि सूख जाये तो समझ लेना मेरी मृत्यु हो गई है।’

देवी ने अपने मैल से नेवला पैदा किया और उसे लेकर वासुकि की बाड़ी में पहुंची। वासुकि सोया हुआ था। वह उसे जगाने लगी। इस पर पहरा देती हुई नागिन ने उसे रोका और कहा— ‘ये बारह मास की गहरी नींद में सोये हुए हैं; यदि जग गए तो अनिष्ट कर बैठेंगे। तुम्हें बड़ल्या चाहिए तो तुम चुपचाप ले जा सकती हो।’ देवी ने जवाब दिया— ‘ऐसा करने पर तो मैं चोर कहलाऊंगी।’

बार—बार कहने पर भी जब नागिन ने नाग को नहीं जगाया तो उसे क्रोध आ गया और क्रोध ही क्रोध में नाग को उसका अंगूठा पकड़ जगा दिया। जगते ही, ज्योंही नाग की दृष्टि देवी पर पड़ी कि वह वहीं भस्म हो गई। उसके भस्म होते ही सुनहली ज्वाला तथा रूपहला धुंआ निकला और राख की ढेरी केसर वर्ण की हो गई। उधर देवलऊनवा में औंखली का दूध सूख गया जिसे देवी भर कर आई थी। इससे देवियों में खलबली मच गई।

संयोग से शिव—पार्वती भ्रमण करते हुए नाग की बाड़ी में आ निकले। पार्वती की दृष्टि देवी की ढेरी पर पड़ी। वह इतनी मोहक तथा लुभावनी थी कि पार्वती उस पर मुग्ध हो गई। उसने शिवजी से इसका रहस्य जानना चाहा पर उन्होंने उसकी बात टाल दी। इस पर पार्वती अलोप हो गई और मक्खी बनकर शिवजी की जटा में जा बैठी। शिवजी के बहुत ढूँढने पर भी नहीं मिली।

तब वे नारद के पास गए। नारद ने युक्ति बताई। उसके अनुसार शिवजी ने पार्वती को आवाज दी—‘पार्वती, तुम जहाँ भी हो आजाओ। तुम्हारे आने पर जो तुम कहोगी, वही करूँगा।’ यह सुन पार्वती दौड़ी—दौड़ी आई। शिवजी ने ढेरी पर अमृत छिड़का और देवी को पुनर्जीवित कर पार्वती की इच्छा पूरी की। देवी उठ खड़ी हुई। शिवजी ने उसे वर मांगने के लिए कहा। देवी ने कहा— ‘यदि देना ही है तो यहीं वर दो कि मैं वासुकि की मारी नहीं मरूँ।’ शिवजी ने वरदान देते हुए कहा— ‘मृत्युलोक में लाली नाम की लुहारिन रहती है। तुम उससे कटारी और जहरी फूल लेकर फिर यहाँ आना। फण काटते समय ज्योंही नाग

तुम्हारे फण मारे; तुम फूल पर उसका एक—एक फण झेलती हुई कटार से उसे काटती जाना और अन्त में जब वह विष रहित हो जाए, तब नाग को मारकर यहाँ से वटवृक्ष ले जाना।'

शिवजी के कथनानुसार देवी लुहारिन के पास गई। वहाँ से कटारी तथा जहरी फूल लेकर पुनः नाग के पास आई और सोये हुए नाग को जगाया। नाग ने जोर की फूंकार मारी। देवी ने फूल पर फूंकार झेली और कटारी से उसका फण काट डाला। इस तरह उसने नाग के सारे फण काट डाले। जब एक फण शेष रह गया तो नागिन ने देवी के पांच पकड़े और कहा— 'कांचली के रूप में एक फण तो मेरे लिए छोड़ती जा।' देवी ने शेष बचा वह फण उसके लिए छोड़ दिया।

यहाँ से देवी बड़ के पास गई और उससे अपने साथ चलने को कहा। बड़ ने यह कह कर कि वहाँ उसका निर्वाह नहीं हो सकेगा, देवी के साथ चलने को मना कर दिया। देवी ने उसे बहुतेरा समझाया और कहा— 'वहाँ मैं तुम्हें अनेक यत्नों से रखूँगी; नित्य दूध दही पिलाऊंगी और इद्योत्तर मानवी भेंट चढ़ाऊंगी।' इस पर बड़ राजी हो गया। देवी ने देवलज्जनवा लाकर एक काली चट्टान पर उसे स्थापित कर दिया।

कई दिनों तक देवी बड़ को दूध दही से सींचती रही पर मानवी भेंट चढ़ाने का अवसर उसके हाथ नहीं आया। एक दिन उसे पता लगा कि यहीं कहीं पहाड़ों पर भान्या नामक जोगी तपस्या कर रहा है। उसके साथ इद्योत्तर चेले भी हैं। देवी ने यह अच्छा अवसर पाया। वह जोगी के पास गई और बड़ की घटना कह सुनाई। जोगी ने प्रसन्न हो बड़ देखने की इच्छा व्यक्त की। देवी उसे निमंत्रण देकर चली आई।

समय पाकर जोगी ने अपने चेलों सहित बड़ के लिए प्रस्थान किया। देवी ने उसकी अच्छी आवभगत की। एक दिन जोगी अपने चेलों को वहीं छोड़कर धारनगर के राजा जेल से मिलने चला गया। पीछे से अवसर पाकर देवी ने सब चेलों को बड़ के भेंट चढ़ा दिए। जोगी लौटा। अपने चेलों को मौत के घाट पाकर वह बड़ा दुखी हुआ। वहाँ से पुनः धारनगर गया और राजा से कहा— 'देवलज्जनवा का जो बड़ है, वह मानव—भक्षी है। उसने मेरे सभी चेलों का भख ले लिया है अतः उसे कटवाकर उसकी जड़ों में तेल डलवाया जाय नहीं तो मैं शाप दूंगा जिससे तुम्हारा राज्य नष्ट हो जायेगा।

राजा ने जोगी की बात मान ली और अपनी सेना को बड़ काटने का आदेश दिया। देवियों को जब यह खबर लगी तो वे सभी मकिखयाँ बन बड़ के पत्ते—पत्ते पर बैठ गई। सेना आई। ज्योही उसने बड़ काटना प्रारम्भ किया; सभी मखियाँ वहाँ से उड़ीं। इससे सारी सेना तितर—बितर होती हुई भागती नंजर आई। मार्ग में धार्या भील मिला। वह जावड़ का रहने वाला था। उसने अपनी स्त्री जाउड़ी के कंचुली, सवा मन धान, थोड़ी सी अमल, तम्बाखू तथा दो बाटियाँ लेने की शर्त मंजूर कर मकिखयाँ उड़ाने का ठेका लिया। वह बड़ के पास पहुँचा। मकिखयाँ को देवी अम्बाव की आण दिला कर उसने जोरदार धुंआ किया जिससे उनकी दृष्टि धूमिल हो गई।

इधर राजा से बदला लेने के लिए देवी अम्बाव तथा चामुण्डा ने कंजरियों का रूप धारण कर धारनगर की ओर प्रस्थान किया। अपने साथ देवियाँ सैकड़ों की तादाद में गधे, पाड़े तथा सूअर भी ले गई। गधों, पाड़ों ने फसलों पर हाथ साफ किया तथा सूअरों ने मकानों की नीवें खोखली कर दी। राजा ने तंग आकर कंजरियों को राज्य से बाहर निकल जाने का हुक्म दिया पर कंजरियाँ नहीं मारीं। उन्होंने कहा— 'हम बरत बांधेंगी और अपना खेल दिखाए बिना नहीं लौटेंगी।'

राजा की आज्ञा से उन्होंने बरत बांधी और खेल दिखाया। उनके खेल से प्रसन्न हो राजा ने कंजरियों को इनाम—इकरार मांगने को कहा। उन्होंने और कुछ न मांग कर केवल धार्या भील तथा जाउड़ी भीलनी मारीं। राजा ने यही किया। देवियों ने नोरता रसी। धार्या को नवरात्रि व्रत तथा पूजन का आदेश दिया। वह ढाक बजाता; जाउड़ी थाली। वह पूजा करता; वह गीत गाती।

दशहरे के दिन सभी देवियाँ पाती विसर्जित करने चलीं। इसमें देवों ने भी भाग लिया परन्तु गजानंद को हाथी का मुंह होने के कारण वहीं छोड़ दिया गया। इस पर गजानंद बड़े क्रोधित हुए और मंत्र द्वारा उड़द फैकने लगे। इससे देवों के रथ उलट गए और उनके पहिये पाताल में जा धंसे। देवों को इसका पता नहीं लगा। वे दौड़े—दौड़े धार्या के पास गए जिसने मुहुरी देखकर गणपत की करामात का फल बताया। देवी आमज ने गणपत को मनाने का बीड़ा उठाया। वह उनके पास गई। उन्होंने प्रत्येक मांगलिक कार्य के पूर्व अपनी पूजा चाही। देवी ने यह बात सहर्ष स्वीकार की। फलतः रथ पूर्ववत् चलने लगे।

मानसरोवर की पाल पर सभी ने अपने डेरे डाले। कालका का काला, चावण्डा का लाल, अम्बाव का भगवा, रामा पीर का सफेद; इस प्रकार नौ लाख देवों के अलग—अलग तम्बू तने। देवियों ने पाती विसर्जित की। इससे सरोवर का पानी गंदा हो गया। पानी गंदा पाकर पणिहारियाँ रीति लौटीं। रावले बैल प्यासे रहे। यह खबर जब हठिया को लगी तो उसने अपने सेणे को बुलाया और कहा— 'मानसरोवर जाकर पता लगाओ।' कौनसी धरती की रांडे हैं जो उधम मचा रही हैं? उन्हें यहाँ पकड़ लाओ। यहाँ लाकर उनसे वायदा डलवाओ, पीसणा पीसवाओ और बालक्ये रखवाओ।'

सेणा सरोवर पर गया। देवियों ने उसे कौड़ों से बुरी तरह पीटा। जब वह लौट कर नहीं आया तो हठिये ने हंसण्या नामक दानव को भेजा। देवियों ने उसे भी तीर द्वारा मार गिराया। यह खबर पा हठिये को बड़ा गुस्सा आया। वह नीले धोड़े पर सवार हो सरोवर पर आया। देवियाँ उसे देख भागने लगीं। भागती हुई देवी अम्बाव का चीर उसके हाथ आ गया। देवी के सामने उसने शादी का प्रस्ताव रखा। इसे स्वीकार करते हुए देवी ने भाड़िया नम (आषाढ़ सुदी नवमी) के लग्न तय किए।

यथासमय हठिया बारात लेकर आया। सीम पर हीरां दासी अगवानी करने गई और नेग के रूप में पाँच मुंड लेने को कहा। हठिये ने मुंड की बजाय पांच मोहरें देनी चाहीं पर

हीरां नहीं मानी। वहां से बारात पनघट पर आई जहां हीरां ने पचास मुँड प्राप्त किये। पनघट पर से चलकर बारात तोरण पर आई। हीरां ने कहा—‘तोरण का नेग सौ मुँडों का है। सौ मोहरों से काम नहीं चलेगा। यदि चंवरी में तू जीत गया तो मुझे शादी कर ले जाना और यदि कहीं हार गया तो यहीं तेरा सिर काट लिया जाएगा।’ हठिया यह बात मान गया पर देवी को परास्त करने में वह असमर्थ रहा। इससे विवश हो उसे अपना सिर कटाना पड़ा। देवियों ने इस उल्लास से नृत्य का उत्सव मनाया। नृत्य का यह उल्लास गवरी के प्रत्येक खेल में देखने को मिलता है।

### गवरी का नामकरण :

गवरी के नामकरण के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें कही जाती हैं—

- (1) शिवजी से भस्मीकड़ा प्राप्तकर भरमासुर ने जब शिवजी को ही भस्म करने की ठान ली तो विष्णु मोहिनी रूप गौरां बनकर शिवजी की सहायतार्थ आये और उन्हें ऐसा करने से रोका। इसी गौरां से गौरी नाम पड़ा और आगे जाकर यह नाम गौरी—गवरी के रूप में प्रसिद्ध हुआ।
- (2) गौरी भीलों की प्रमुख आराध्य देवी भी कही जाती है। इसी से ये लोग गवरी धारण करते हैं। इसे गौरज्या भी कहते हैं; इसलिए कुछ लोग इसी से गवरी नाम पड़ा मानते हैं।
- (3) गवरी में दो राइयां होती हैं। इनमें एक तो मोहिनी रूप विष्णु होते हैं तथा दूसरी शिव—पत्नी गौरी होती है। लोकजीवन में यह गौरी—गौरां—गवरां आदि नामों में भी जानी जाती है। इसी गौरी—गौरां—गवरां से इसका नाम गवरी पड़ा।
- (4) गोलाकार नृत्य से आशय पृथ्वी की परिक्रमा करना है। पृथ्वी को कई नामों से संबोधित किया गया है। अमरकोश में उसके 38 नाम गिनाये गए हैं। इनमें एक नाम गहवरी है। यही गहवरी नाम लोकजीवन में गवरी के रूप में सुनने को मिला है। मध्यप्रदेश के आदिवासियों में भी गवर नामक नृत्य प्रचलित है।
- (5) गवरी से तात्पर्य गोलाई से है। इसमें अभिनीत हर खेल—सांग के पूर्व और समाप्ति पर सारे खेल्ये मिलकर गम्भत भरते हैं अर्थात् गोलाकार नृत्य करते हैं। यह गोलाकार पृथ्वी का सूचक है।

हमारी दृष्टि में गवरी नामकरण के सम्बन्ध में जो अन्तिम बात कही गई है, वही अधिक समीचीन तथा युक्ति संगत लगती है।

### गवरी—राई :

लोकजीवन में यह गवरी राई के नाम से भी प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि गौरी का एक नाम राई भी था। इसलिए गवरी के साथ—साथ इसे राई भी कहा जाने लगा। इस सम्बन्ध में एक बात और कही जाती है जो अधिक साधार लगती है। इसके अनुसार भरम होते भरमासुर ने शिवजी के साथ उसका नाम अमर रहे, ऐसी इच्छा प्रकट की थी। इस

पर शिवजी ने उससे कहा—‘ऐसा ही होगा। तुम्हारी याद में हम राई का मंडल रचायेंगे। इसमें स्वांग तुम्हारा और नाम मेरा होगा। उसका जो मुखिया होगा उसकी जटा तथा भगवा तो मेरा और खांडा व शीश तुम्हारा रहेगा।’

आगे जाकर यही मंडल राई के रूप में लोकप्रिय हुआ और उसका प्रमुख नायक बूड़िया ‘राईबूड़िया’ कहलाया। ऐसा भी कहा जाता है कि कैलाशपुरी में शंकर ने जब एकासन बैठ बारह जुग का नेम धारण किया तो उन पर दीमक ने अपना घर बना लिया। छाती पर थूहर पैदा हो गए। कान में बया पक्षी ने धोंसला बना डाला और मस्तक पर नागिन अपना धेरा बनाकर बैठ गई। पार्वती ने उनके तन का मैला उतारा और ऊंचे आकाश में फैक दिया। इससे चील पैदा हुई। वह आकाश में मंडराने लगी। मंडराते—मंडराते उसे जोरदार भूख लगी। नीचे चमकते भाले पर उसकी नजर पड़ी जिससे वह उस पर झपटी। इससे आधी तो वह भाले में पो गई और आधी शिवजी की धूणी पर आ गिरी। पार्वती के कहने पर शिवजी ने उस पर अमृत छिड़का। इससे बारह—बारह बरस की दो कन्याएं पैदा हुईं। ये दोनों ही कन्याएं गवरी में राई के रूप में भाग लेती हैं। इसलिए भी गवरी को राई नाम से सम्बोधित किया जाता है।

लोकजीवन में राई मथनी को कहते हैं। गवरी में मुख्य नायिका राई है। यह राई भी एक नहीं, दो—दो की संख्या लिए है। ये दोनों साथ—साथ रहती हैं। जब ये नृत्य करती हैं तो ऐसा लगता है जैसे ये राई (मथनी) की तरह चक्राकार फेरे ले रही हैं। ये फेरे उल्टे—सीधे वही क्रम लिए होते हैं जो विलौना करते समय राई का होता है। दोनों राइयों का बनाव—सिणगार भी एक जैसा हमशक्ल लिए होता है। उनमें किसी तरह का भेद नहीं किया जा सकता। नाचते समय उनके घाघरे का घेर दही मथते, छाँ फेरते समय राई जैसा हू—ब—हू प्रतिरूप लिए होता है।

बुन्देलखण्ड के गोंड आदिवासियों में भी ऐसा ही राई नामक नृत्य प्रचलित है। राजस्थान का चकरी नाम से जाना जाने वाला नृत्य प्रारंभ में राई नाम से ही अपनी पहचान रखता था। इसका एक अर्थ राहगीरों को आकर्षित करने वाले नृत्य से भी है। गवरी भी ऐसा ही नृत्य है। उसके पात्र भी राही हैं जो किसी स्थान विशेष के लिए स्थिर नहीं हैं फिर इसका प्रदर्शन भी किसी मंच विशेष पर नहीं देकर राह विशेष में अर्थात् चौराहे पर ही हुआ मिलता है।

### नृत्य—तत्त्व :

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गवरी का मूल उद्भव सामूहिक नृत्य से ही हुआ है। इस सम्बन्धी कथा—किंवदंतियों में नृत्य की प्रधानता के कई तत्त्व मिलते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार कहे जाते हैं—

- (1) भरमासुर मर्दन के बाद सभी देवताओं ने सामूहिक नृत्य का आयोजन किया। इसमें शिवजी ने भरमासुर की शक्ल का मुखौटा धारण किया।

- (2) शिवजी की धूणी पर प्रतिदिन एक भील मूली लाया करता था। एक दिन शिवजी ने प्रसन्न हो उसे भगवा चादर, खांडा एवं भरमासुर की खोपड़ी देते हुए प्रतिवर्ष सामूहिक नृत्योल्लास करने के लिए कहा, जो आगे जाकर गवरी रूप में प्रकट हुआ।
- (3) पार्वती के पीहर चले जाने पर शिवजी बड़े दुखी हुए। उनका मन बहलाने के लिए भीलों ने सामूहिक नृत्य का आयोजन किया। इसमें शिवजी ने भी भाग लिया। यही नृत्य गवरी का मूलाधार बना।

उपर्युक्त कथा—किस्सों के मूल में नृत्य की ही प्रधानता पाई जाती है। सामूहिक आनंद एवं उल्लास की अभिव्यक्ति का नृत्य ही एकमात्र प्रमुख आधार रहा है। इस दृष्टि से गवरी में यदि सामूहिक नृत्य की प्रधानता देखी जाती है तो कोई आश्चर्य नहीं। इसमें जितने भी खेल अभिनीत किये जाते हैं उनमें नृत्य की मात्रा सर्वाधिक रूप में देखने को मिलती है।



थाली और मादल बजाते हुए वादक और उनके चारों ओर गवरी  
के खेल्ये तथा मुख्य पात्र बणजारा—बणजारी

गवरी का प्रदर्शन सुबह से शाम तक, दिनभर होता है किन्तु लगातार नहीं, सुस्ताते—सुस्ताते ठहर—ठहर कर होता है। यह प्रदर्शन केवल नृत्य नहीं है। पूरा नाट्य—रूप है। नृत्य के साथ संगीत चलता है। थाली और मादल का भिन्न—भिन्न चरणों में गूंजता गहराता घोष प्रदर्शन में तन्मयता बनाए रखता है। उसकी संरचना को कसावट दिए रहता है। उसके ओज को उर्ध्वगामी अनुशासन से बांधे रखता है।

प्रदर्शनकर्ता अपनी प्रस्तुति को रोचक और सारावान बनाए रखने हेतु नाना संकेतों द्वारा भावाभिव्यक्ति देते हैं। प्रसंग को रमणीय और भावानुकूल परचम देने के लिए नाच की कई भंगिमाएँ निकालते हैं। कभी झुकते हुए तो कभी उछाल खाते हुए; कभी लेटते हुए तो कभी दौड़ते, लपकते, उड़ी—गुड़ी खाते नृत्य के करिश्मों से दर्शकों को लोटपोट कर देते हैं।

यही स्थिति गायन, संवाद और गाथा—बोलों की देखने को मिलती है। गायन के साथ नृत्य की अवस्थिति और आरोह—अवरोह का सामंजस्य बड़े ही मनोरम रूप में देखने को मिलता है।

### गवरी—वाद्य :

मांदल और थाली, गवरी के ये दो ही वाद्य हैं। इन्हीं वाद्यों के सहारे पूरी गवरी का रासमंडल संचालित होता है। मांदल की बजाई पर धाई चलती है। यह बजाई ऊब धाई, हिंडोला धाई, आड़ी धाई, भगमगल्या धाई, हणका धाई आदि विभिन्न रूप लिए रहती है। प्रारम्भ में जोर जोर की आवाज दिए ऊब धाई चलती है जिससे लोगों को ज्ञात हो जाता है कि गवरी का खेल शुरू होने वाला है।

मांदल बजाने वाला मांदल्या, जादू—टोना, तंत्र—मंत्र, मूठ का बड़ा जानकार होता है। पूरी गवरी को यह सभी प्रकार के अनिष्टों से बचाए रखता है। एक तरह से गवरी का यही मुख्य रक्षक होता है। इसके पास एक लाल झोली रहती है जिसमें नींबू आदि मंत्रित किए हुए रहते हैं। गवरी के समय यह झोली त्रिशूल के पास रखी रहती है।

मांदल बजाते हुए वह चारों ओर की विपत्तियों के प्रति बड़ा सजग एवं सावधान रहता है। दुश्मन चलते खेल में मूठ आदि छोड़कर गवरी पात्रों पर मारक वार करते हैं। यह मूठ बणजारा, मीणा, भोपा, भिंयावल पर जल्दी आती है। खेल चलते समय यदि किसी पर मूठ का वार पड़ता है तो उसकी समस्त जिम्मेदारी भी मांदल्ये की रहती है। इसे सारा पता रहता है और वह इस प्रकार की अनिष्टकारी शक्तियों का मुकाबला भी बड़ी बहादुरी से, अपने जादुई करतब से, करता है।

कोई मूठ आती देख वह चलते खेल में अपना जूता ऊपर आकाश की ओर फैकता है जो ऊपर ही अधर में धूमता रहता है। जूता झेलना और फैकना; दोनों ही क्रियाएँ बड़ी जबर्दस्त होती हैं।

नाथद्वारा के पास घोरा घाटा में रम रही पूरी की पूरी गवरी ही जादू—टोने की शिकार होकर समाप्त हो गई। ऐसे ही भवानी माता की भागल में रमते अकाल मृत्यु प्राप्त करने वालों के चीरे बिठाये हुए हैं।

नया सिक्खड़ अपना जादुई प्रयोग वृक्षों पर करता है। ऐसी स्थिति में हराभरा वृक्ष सूखा काठ बन जाता है और वही वृक्ष पुनः लहलहाने भी लगता है।

यों भी जो गवरी महादेव शिव को केन्द्रस्थ किए हुए हैं तब वह तांत्रिक क्रियाओं, मंत्रों, टोनों टोटकों और सम्मोहित करने वाले साधक अभिनेताओं से अछूती कैसे हो सकती है। शिव की उपासना पद्धति के कई शास्त्रीय एवं लैकिक स्वरूप रहे हैं। देवी गौरजा—गवरजा के प्रति अटूट आस्था एवं भक्ति का ही प्रताप है कि अभिनेताओं में शक्ति का ऐसा सम्मोहन रहता है जिसके बल पर वे दर्शकों में बैठे महिला—पुरुषों में शक्ति का अवतरण करते पाये जाते हैं।

इस शक्ति के वशीभूत लोकदेवी—देवता के आराधक भोपे भी अपने शरीर में देवत्व का भाव लिए कांपते—धूणते अपनी पीठ पर सांकलों की फटकारी बौछार देते गवरजा के समुख नत मस्तक होते हैं। नुगरी आत्माएँ भी इस समय हाक करती हुई, बुरी तरह धूणती दंडवत होती हैं। वे बार—बार अपने हाथ, पांव, जीभ, बांह आदि शरीर के अंगों से असाधारण, भयावनी क्रियाएँ कर दर्शकों को रोमांचित किए रहते हैं। साधारण स्थिति में चाहे कोई कितना ही बलिष्ठ हो, ऐसी क्रियाएँ करतई संभव नहीं होतीं।

यों गवरी के प्रारंभ में ही राईबूड़िया स्तुति—गान द्वारा सभी देवी—देवताओं को गवरी प्रदर्शन के पूरे समय तक अपना सान्निध्य देने का आहवान करता है। अदृश्य रूप में गणेश से लेकर खेड़ाखूट, काला, गोरा, लाला, फूला, मामादेव, राड़ा, रूपण, खाकल, ताखा, भूणा, मेंदू लेमच, खेमच, आवरा, एलवा, गुना, मेनू, कालका, वरेकण, धरमराज, लटकाली, चौथ, पीपलाज आदि देवों की पधरावणी बनी रहती है। इधर दृश्य रूप में चावंडा, अंबाव, बूड़िया तथा गवरजा के भोपों की उपस्थिति के बिना तो गवरी का पत्ता तक नहीं हिलता। ये ही शक्तियाँ मिलकर पूरे गवरी मंडल का संचालन करती हैं और हर प्रदर्शन के अंत में भावोद्वेग के रूप में अपनी उपस्थिति का जोरदार धूणक दिए दृष्टिगत होती हैं।

गवरजा के भोपे को जब गवरी ली जाती है तब ही देवी गवरजा थरपण करती है। इसका प्रभुत्व गवरी तक ही बना रहता है जबकि गवरी नायक बूड़िया परम्पराशील रूप में पीढ़ी—दर—पीढ़ी उत्तराधिकारी के रूप में चलता रहता है।

### अभिनय का विकास :

सामूहिक नृत्य जब परिपक्व रूप धारण कर लेता है तो उनमें शनैः—शनैः अभिनय—तत्त्वों का समावेश होने लगता है। मनोविनोद के अवसरों पर अभिनीत होने वाले स्वांग—रूपों का भी यही विकास—क्रम रहा है।

गवरी में जो स्वांग—स्वरूप देखने को मिलते हैं उनके बारे में एक बात यह भी कही जाती है कि पार्वती के विरह में जब शिवजी अन्यमनस्क हो गये तो उनके गणों ने स्वांग रूप धर कर शिवजी का मन बहलाया। इस नृत्योल्लास में शिवजी के मुंह पर भयावना चेहरा (मुखौटा) लगाया गया।

शिवजी पार्वती को भी अपने साथ नृत्य करती हुई देखकर उसका विरह भूल सके इसलिए एक गण ने पार्वती का रूप धारण किया। नृत्य—मंडल के नायक होने के कारण शिवजी उससे अलग रहकर प्रत्येक गण—अभिनेता को परखते। उसके पास जाकर अपनी मुँछों के ताव देते। धूंधरू खनखनाते। खांडा दिखाकर अपना उल्लास व्यक्त करते। अच्छे काम पर पीठ थपथपाते और त्रुटि रह जाने पर सही मार्ग की ओर प्रवृत्त करते। सामूहिक नृत्य में कोई उनका अंधानुकरण नहीं कर पाये इसलिए वे उन सबसे विपरीत कुछ कदम आगे तो कुछ कदम पीछे की ओर बढ़ते—हटते हुए अपने नृत्य के कदम भरते और उस सम्पूर्ण मंडल का संचालन करते। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अभिव्यक्ति की

आवश्यकता एवं मन के उन्माद ने गवरी के अभिनय तत्व को सबलता प्रदान कर उसके विकास को अक्षुण्ण बनाए रखा।

### गीत तत्व का समावेश और विकास :

धीरे—धीरे जब अभिनय पक्ष प्रबल बना तो स्पष्ट रूप से उसके प्रयोजन भी दिखाई देने लगे। अभिव्यक्ति के अभाव में कोई भी अभिनय अपना प्रभाव छोड़ता हुआ सामाजिकों को प्रभावित नहीं कर सकता। अतः गीति—तत्व की उद्भावना हुई जिसमें अभिनय की मूकता को वाणी, विलास और वेग प्रदान कर उसे सचेतन बनाया। वाद्यों के आविष्कार ने वाणी को ओप देकर उसे रंग, रूप और रस पूरित किया। अभिव्यक्ति का यह रूप सर्वाधिक पद्य रूप में प्रकट हुआ, गद्य में नहीं।

इसके अनुसार प्रारंभ में छोटे—छोटे बोल निसृत हुए। तदनन्तर अनेक सामाजिक प्रतिभाओं के पल्ले पड़ते—पड़ते इन बोलों ने गीतों का रूप धारण किया। इसमें बरसों लगे। गीतों का यह क्रम सदैव एक सा नहीं रहा। युग—बोध के बदलते हुए परिवेश के साथ इनमें अनेक उतार—चढ़ाव तथा आवर्तन—परिवर्तन हुए। गवरी में गीत—तत्त्वों का समावेश और विकास भी इसी क्रम से हुआ।

### लोक—रंगमंच :

सामुदायिक रूप में मनोविनोद के जितने भी क्रियाकलाप देखने को मिलते हैं वे सदैव खुले स्थानों में आयोजित किए जाते हैं। पूरा समूह का समूह इनमें भाग लेता है और आनन्द की अमराइयों में उमड़ पड़ता है। ऐसे खुले स्थानों में खेत, खलिहान, चौराहा, टेकरी आदि होते हैं। गवरी चूँकि भीलों का सामुदायिक अनुरंजन रहा है, अतः उसका लोकमंच भी इसी प्रकार का रहा है। गाँवों तथा शहरों में जहां भी ऐसे स्थान मिल जाते हैं, आसानी से इनका प्रदर्शन दे दिया जाता है। ऐसा मंच समतलीय होता है जिसे सर्वदिशीय मंच भी कहते हैं।

### प्रदर्शन—समय :

मुहूर्त के अनुसार प्रायः रक्षाबन्धन के बाद आने वाली ठण्डी राखी के दिन गवरी ले ली जाती है और मुहूर्त के अनुसार ही आश्विन कृष्णा चतुर्थी के आसपास इसका समापन समारोह मनाया जाता है। यह समारोह दो दिन का होता है जो घड़ावण तथा वलावण के नाम से जाना जाता है। गवरी का लगभग सबा महीने का यही समय उसका प्रदर्शनकाल है।

गवरी लेने के दिन देवी के समुख भील स्त्रियां गीत गाती हैं। उसमें भी गवरी के प्रदर्शन—समय का संकेत मिलता है। उसके अनुसार पार्वती शंकर के समुख बार—बार पीहर जाने की रट लगाती है। शिवजी उसे मना करते हुए कहते हैं—‘वहां किससे मिलने जा रही हो, काका बाबा तो तुम्हारे मर चुके हैं?’ पार्वती कहती है—‘वहां बहुत सारे वृक्ष हैं। मैं उन्हीं से मिलने जा रही हूं।’ इस पर शिवजी कहते हैं—‘वृक्ष आदि भी जोर की हवा चलने से

उखड़ गए हैं।' पार्वती उत्तर देती हैं— 'तो मैं अपने गाँव की सरहद के पथरों से ही मिलकर लौट आऊंगी। मुझे आज्ञा दीजिए, मैं सवा महीने की कौल में बंधकर जाती हूँ।'

पार्वती सवा महीने की कौल कर पीहर चली जाती है। उसके चले जाने पर शिव के गण लगातार सवा महीने तक सामूहिक नृत्य का आयोजन कर शिवजी का मन बहलाते हैं। इधर पार्वती के अपने पीहर आने पर पीहरवाले उसकी खुशी में, जब तक वह वहीं रहती है, नृत्य—गान द्वारा उल्लास व्यक्त करते हैं।

### भील जाति से सम्बन्ध :

गवरी का प्रदर्शन केवल भील लोग ही करते हैं। इसलिए भीलों का इससे सम्बन्ध जानना बहुत आवश्यक है। इस सम्बन्ध में तीन—चार बातें कहीं जाती हैं :—

- (क) शिवजी भीलों के प्रमुख देव माने जाते हैं। अतः भीलों ने गवरी के रूप में उनके जीवन की सर्वाधिक प्रभावशाली घटना को अपनाया और उनके प्रति अपनी श्रद्धा एवं भक्ति का परिचय दिया।
- (ख) भील शिव के सबसे अधिक विश्वासपात्र व्यक्ति रहे हैं। भस्मासुर की इच्छा को अमर बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था कि उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति हाथ लगे जिसे वे भस्मासुर की खोपड़ी देकर उसकी याद में सामूहिक नृत्योत्सव आयोजित करा सकें। इसके लिए उन्होंने प्रतिदिन अपनी धूणी पर मूली लाने वाले भील को ही ठीक समझा और उसी से उसका आयोजन करवाया।
- (ग) पार्वती का पिता हेमाजल (हिमाचल) जाति का भील था। इसलिए भील ही गवरी के उपासक बने। यह बात भी सुनने में आती है।
- (घ) शिवजी ने राई का जो मंडल बनवाया था उसे आगे जाकर भील को ही सौंपा। यही मंडल गवरी अथवा राई के नाम से जाना जाता है।

इससे स्पष्ट है कि प्रारम्भ से ही गवरी के साथ भीलों का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और वे ही एकमात्र उपासक, आयोजक एवं अभिनेता कहे जाते हैं।

गवरी के रमणिये मोतबिर भीलों से ही एक कथा यह सुनने को मिली कि प्रारंभ में यह गवरी ब्राह्मणों द्वारा खेली जाती थी। उनके एक गमेती (भील) हाली (नौकर) था। जब ब्राह्मण गवरी खेल रहे थे तो वह हारी भी उसे देखने में इतना तल्लीन हो गया कि सारे काम भूल बैठा। इस बीच उसके मालिक की निगाह जब उस पर पड़ी तो उसने खेल के बीच से आँख दी जिससे वह नौकर खेत पर पाणत करने चला गया लेकिन वह तो गवरी में इतना तन्मय हो चुका था कि वहां भी गवरी को ही अपने में आत्मसात किए नृत्यमग्न होता रहा। इससे खेत में जो फसल लहलहा रही थी, वह उसके द्वारा उचल दी गई।

गवरी समाप्ति के बाद जब घरधणी अपने खेत पर पहुँचा और फसल रौंदी हुई पाई तो नौकर को बहुत बुरी तरह डांट पिलाई और उसके द्वारा गवरी अछूत हुई मान बैठा।

गवरी पर अपने नौकर की ऐसी कुदृष्टि वह बर्दाश्त नहीं कर सका। रात्रि को उसने पंचायती चौरे (चबूतरे) पर गाँव वालों को एकत्र किया और अपने हाली द्वारा गवरी बटालने की बात रखी। भील पंचों ने तब आपसी सलाह कर तय किया कि पूरी गवरी को ही भीलों को सौंप देनी चाहिए। यह सोच उन्होंने उस गाँव के भील मुखियाओं को इकट्ठा किया और सवा रुपया में गवरी उनके रहन रख दी। कहते हैं तब से भील लोग उस गवरी को नाचते आ रहे हैं।

यहां यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि मेवाड़ अत्यन्त प्राचीनकाल से ही शक्ति की उपासना करने वाला अग्रणी क्षेत्र रहा है। यहाँ की अरावली पर्वत श्रेणियां विश्व की सर्वाधिक प्राचीन पर्वतमाला कहीं गई हैं। यहाँ जगह—जगह देवी मंदिरों के शक्तिपीठों की गड़ी उदात्त परम्परा देखने को मिलती है। ये शक्तिपीठ दो रूपों में दृष्टिगत होते हैं। इनका एक रूप कलात्मक मातृका मन्दिरों का रहा है तथा दूसरा अनगढ़ प्रतिमाओं से युक्त देवरों के रूप में देखने को मिलता है।

इसा की चौथी शताब्दी में उदयपुर के आसपास का इलाका मंदिर—संस्कृति का पूर्ण दैव लिए था। यहाँ का उद्देश्वर मंडल मंदिरों के माहात्म्य का जीता जागता रससिद्ध स्थल था जहाँ गौरी तांडव नृत्य ने देवाराधना के उन्नत समोहन के रूप में अपनी प्रसिद्धि फैला रखी थी। जब इस संस्कृति का लोप होता दिखाई दिया तब भील—गमेतियों ने अपने रंग—दंग से गौरी तांडव को लुप्त होने से बचाया, जिसके सूत्र, बारीकी से यदि अध्ययन किया जाय तो गवरी में हाथ लग सकते हैं।

यदि ऐसा है तो शास्त्र और लोक की कसौटी पर खरी उत्तरती वह नृत्य पद्धति हमें हाथ लगती है जिसके अन्तर्गत यह कहा जाता है कि लोक में प्रचलित वह नृत्य विधा जो अपने विकास के चरम को छूती हुई शास्त्र का बाना धारण कर शास्त्रीय बन जाती है। वही शास्त्रीय पद्धति जब किन्हीं कारणों से अपने स्वरूप को खो बैठती है तब पुनः लोक उसे अपने आलोक में सरजीवन देता हुआ लोकजीवन की धड़कन बना देता है। गौरी तांडव और गवरी का कथा—चक्र इसी तानेबाने से तनाबुना हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

एक अन्य कथा के अनुसार महादेव शिव के एक ब्राह्मण पुजारी था। भक्ति में पूर्ण समर्पण होने से प्रतिदिन वह अपना शीश चढ़ाता और पुनः सरजीवित हो उठता। यह सुन एक भील उस मंदिर में जा पहुँचा और महादेव को चढ़ाने के लिए तालाब से माछों का पोट भर लाया। माछों चढ़ाने पर महादेव बड़े प्रसन्न हुए और बोले— 'तुमने मुझे इतने सारे कच्चे—बच्चे दिए तो तुम्हारे भी इतने ही कच्चे—बच्चे हों।'

कहा जाता है कि महादेव के इस वरदान से भील जाति में आशातीत वृद्धि हुई। सब मिल समूह रूप में महादेव की आराधना करने लगे। आराधना में वे जो नृत्य करते, वही आगे चलकर गवरी के रूप में चल निकला।

## ऐतिहासिक आधार :

कुछ लोग वल्लभनगर को गवरी का उद्गम स्थल मानते हैं। यह स्थान उदयपुर से लगभग 25 मील पूर्व में है। इसका पूर्व नाम ऊंठाला था। यहाँ की गवरी में चार राझ्यां तथा दो बूड़िये बनते रहे हैं। कहा जाता है कि एक समय जब गवरी विसर्जित की जा रही थी तो राई तथा बूड़िया तलाब में ही अलोप हो गए। वापस लौटकर नहीं आए। इस घटना के कई वर्ष बाद तक यहाँ गवरी नहीं ली गई।

एक दिन भोपे को गवरी लेने का स्वप्न आया। उसने यह बात अपनी पंचायत में रखी। वलावण का दिन आया। अबकी बार जब राई बूड़िया आदि गवरी विसर्जित करने गए तो लौटते समय उनके साथ वे राई बूड़िया भी आते दिखाई दिए, जो पहले गवरी में अदृश्य हो चुके थे। तब से यहाँ गवरी में दो बूड़िये, चार राझ्यां बनने की परम्परा चल पड़ी। यह घटना सं. 1600 के आसपास की कही जाती है परन्तु इस घटना में गवरी के उद्गम के कोई बीज हाथ नहीं लगते।

उदयपुर के पास बड़ी उन्द्री गाँव के भीलों की मान्यता के अनुसार गवरी का उठाव झाड़ोल के पास के गाँव पालावाड़ा से है। इस मान्यता के अनुसार एकबार उनके बड़ेरा भीलजी को महादेव शंकरनाथ ने स्वप्न दिया जिसमें गवरी का महारास बताया गया। उस स्वप्न के अनुसार एक बूड़िया, दो राझ्यां और पूरे गाँव के भील मिलकर नाच रहे हैं। पास में उनकी कुलदेवी खेड़ादेवी खड़ी है। उसके हाथ में त्रिशूल लिया हुआ है। थाली और माँदल बजाई जा रही है। यह नाच भीलजी ने बड़ी देर तक देखा और जब तृप्त हो गये तो उनका सपना टूटा। तब परभाती हो चुकी थी।

भीलजी ने यह बात गाँववालों को बताई तब यह तय हुआ कि वैसा ही रास मंडल रचाया जाय और महादेव की लीला शुरू की जाय। तब से यह खेल प्रारम्भ हुआ। खेल के बीच में त्रिशूल रोप दी जाती है, जो देवी खेड़ा की प्रतीक है। वह पूरे खेल में बनी रहती है।

गाँववाले फसल ठीक होने पर तथा समय अच्छा होने की स्थिति में देवी के मंदिर जाकर भोपे से अरदास करते हैं और देवी से गवरी लेने का हुक्म मिलने पर इसका खेल शुरू करते हैं। यह गवरी प्रति वर्ष नहीं ली जाकर प्रति तीसरे वर्ष ली जाती है। लगातार सूखा पड़ने या और कोई विपदा आने की स्थिति में कभी-कभी यह पाँच वर्ष में भी ली गई है। एक आध गाँव में तो यह ग्यारह वर्ष बाद ली गई।

बड़ी उन्द्री में एक वर्ष गवरी विसर्जन के समय बड़ा चमत्कार यह रहा कि यकायक दोनों राझ्यां लुप्त हो गईं। जब अगली बार राई लेने का अवसर आया तब अन्य दो व्यक्ति को यह काम सौंपा गया पर विसर्जन के समय फिर एक नया चमत्कार हुआ और जो दो राझ्यां पिछली बार गायब हो गई थीं वे साक्षात हो उठीं तब से वहाँ दो की बजाय चार राझ्यां बनने की परम्परा प्रारम्भ हो गई, जिसका निर्वाह आज तक हो रहा है।

गवरी जब भी ली जाती है तब प्रत्येक परिवार से एक-एक व्यक्ति उसमें भाग लेना धार्मिक कर्तव्य समझता है। ऐसा नहीं होने पर उस परिवार में विपदा आने की आशंका बनी रहती है। यही कारण है कि शारीरिक दृष्टि से अक्षम होने अथवा वृद्धावस्था के कारण क्षमता विहीन होने पर भी ऐसे व्यक्ति गवरी में अपनी उपस्थिति देते पाये जाते हैं। ऐसे परिवार भी देखे गये हैं जिनमें कोई व्यक्ति गवरी में शरीक होने वाला नहीं होता है तब वे दिन दहाड़ी (दैनिक मजदूरी) पर ही अन्य भील को अपनी ओर से नियुक्त करते हैं लेकिन गवरी का किसी तरह अपने परिवार की भागीदारी के अभाव में खंडित नहीं होने देते हैं।

**गवरी सम्बन्धी कथा—** किवदंतियों में ऊनवास, देवलऊनवा, बड़ल्याहींदवा, मानसरोवर, धारनगर, जावड़ आदि का जो उल्लेख आता है, वह साधार है; कपोल कल्पित नहीं। ऊनवास प्रसिद्ध रणक्षेत्र हल्दीघाटी के पास एक छोटा सा गाँव है। उदयपुर से यह लगभग 32 मील दूर है। यहाँ पीपलाज माता का एक मन्दिर है। इसे देवलमालिया भी कहते हैं। शीघ्रलाज देवियों में बड़ी देवी मानी जाती है। देवी के इसी मन्दिर के कारण ऊनवास के नाम से भी प्रसिद्ध है। मन्दिर के प्रवेश द्वार के बाईं ओर की ताक में 17 पंक्तियों का एक शिलालेख लगा हुआ है। वि.सं. 1016 का यह शिलालेख काले पत्थर का है, जो कुटिल लिपि में लिखा गया है।

ऊनवास से लगभग एक मील दूर बड़ का वह वृक्ष है जिसे देवी पाताल से सर्व प्रथम यहाँ लाई थी। यही बड़ 'बड़ल्याहींदवा' के नाम से जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि पहले यह बड़ बारह बीघे में फैला हुआ था। थाली जितने बड़े इसके पत्ते तथा सुवर्ण रंगी इसकी कोंपले थीं। इसके कई शाखा-प्रशाखाएँ थीं। इन्हीं शाखाओं के सहारे देवियां यहाँ झूला झूलती थीं तथा नाना प्रकार की क्रिड़ाएँ करती थीं। मेवाड़ी में बड़ 'बड़ल्या' तथा 'झाड़ा हींदा' कहलाता है। झूलने के संदर्भ में यहाँ 'हींदना' शब्द का प्रयोग आता है। इसी बड़ल्ये के यहाँ हींदा हींदने के कारण इसका नाम 'बड़ल्या हींदवा' पड़ा। कहा जाता है कि किसी समय इसके पत्ते-पत्ते पर सिन्दूर लगा हुआ था।

बड़ल्या हींदवा से खमनोर लगभग तीन मील दूर पड़ता है। यहाँ, जहाँ अब गुलाब की खेती होती है, किसी समय मानसरोवर था। गुलाब की बाड़ियों वाला यह भाग आज भी 'मानसरोवर' कहलाता है। धारनगर वर्तमान राजनगर का प्राचीन नाम कहा जाता है। यह स्थान उदयपुर से लगभग चालीस तथा ऊनवास से बीस मील दूर उत्तर-पश्चिम में है। इसी के पास जावड़ गाँव अवस्थित है। राजसमंद झील के कारण राजनगर अब राजसमंद के नाम से जाना जाता है और इसी नाम से जिला बना हुआ है।

## पात्र और उनके चरित्र :

गवरी नाट्य में चार प्रकार के पात्रों की अवतारणा देखने को मिलती है। ये पात्र हैं—  
**(अ) देव पात्र (ब) मानव पात्र (स) दानव पात्र और (द) पशु पात्र।**

### (अ) देव पात्र :

देव पात्र सभी प्रकार के विकारों से रहित आदर्श के प्रतीक एवं कालजयी होते हैं। तीनों लोकों में इनका आवागमन रहता है। विविध रूप धारण कर ये जहाँ चाह वहाँ राह के रूप में विचरण करते रहते हैं। दुखी जीवों को सांत्वना देना, उनके दुःख दर्दों को दूर करना, मरे हुओं को पुनर्जीवित करना और वरदान देकर उनका कार्य सिद्ध करना इनके दैनिक जीवन की प्रमुख चर्या रहती है। यौगिक शक्ति के बल पर अलौकिक क्रिया-व्यापारों द्वारा समाज में सद्वृत्तियां स्थापित कर, असदगामियों को बुरी तरह कचोटते हैं और उन पर विजय प्राप्त कर सामाजिक वेतना को स्वस्थता प्रदान करते हैं। गवरी में कालिका तथा शिव-पार्वती देव पात्रों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

### (ब) मानव पात्र :

प्राणियों में मानव सबसे उत्तम प्राणी माना जाता है। चौरासी लाख योनियों में भी मानव योनि सर्वश्रेष्ठ योनि कही गई है। इसीलिए देवगण भी मानव योनि पाने के लिए लालायित रहते हैं। यह मानव अच्छे-दुरे रूपों तथा कर्मों से युक्त देव तथा दानव दोनों का मिश्रित रूप लिए होता है। बुद्धि, बल, ज्ञान तथा विवेक में कोई इसकी सानी नहीं रखता। मानव की इसी श्रेष्ठता के कारण गवरी में मानव पात्रों की बहुलता देखी जाती है। इनमें (1) बूड़िया (2) राई (3) कुटकड़िया (4) कंजर-कंजरी (5) मीणा (6) नट (7) खेतुड़ी (8) शंकर्या (9) कालबेलिया (10) पाईता (11) वाणिया (12) जोगी (13) गरड़ा (14) कानगूजरी (15) कालू कीर (16) बाणजारा (17) शकलीगर (18) भोपा (19) बनवारी (20) गोमा (21) बांझड़ी (22) फत्ता-फत्ती (23) बगली (24) देवर भोजाई आदि उल्लेखनीय हैं।

### (स) दानव पात्र :

अशुद्ध एवं असत् के प्रतीक तामसी वृत्ति के असुर, दैत्य दानव कहलाते हैं। ये क्रूर, अहंकारी, कष्टदायी तथा दुर्गुणी होते हैं। प्रकृति से ये विघ्वांसक तथा संहारी होते हैं। इनके सिर पर सींग लगे हुए रहते हैं। शक्ल सूरत से ये बड़े भयावने तथा अभद्र लगते हैं। गवरी नाट्य में (1) भंवरा (2) बड़ल्या भूत (3) हठिया (4) भियावड़ दानवों के रूप में अभिनीत होते हैं।

### (द) पशु पात्र :

पशुओं का संसार देव, मानव तथा दानव; इन तीनों से भिन्न होता है। इनका रहन-सहन,



मियावड़ : कलात्मक सज्जा में बेजोड़ गवरी का राक्षस पात्र

आचार-विचार, क्रिया-कलाप तथा जीवन-यापन का ढंग अपने प्रकार का निराला होता है। ये पशु दो प्रकार के होते हैं— हिंसक और अहिंसक। गवरी के पशु मात्र हिंसक पात्रों में आते हैं। इनमें (1) सूर (2) रीछड़ी (3) नार मुख्य हैं।

### घड़ावण-वलावण :

गवरी लेने के प्रथम दिन तो उसी गाँव के चौराहे पर नाची जाती है। उसके बाद भोपा शकुन के अनुसार उसकी दिशा तय करता है तब उनमें से एक व्यक्ति पुजारा बन इस व्यवस्था के लिए पास के गाँव जाता है और गाँव के मांजी को गवरी खेलाने की पाती देता है। गाँववाले मिलकर गवरी को अपने यहां पामणी करने की राय बिठाते हैं और स्वीकृति मिलने पर वहां गवरी बुलाई जाती है। इस प्रकार आगे-से-आगे गवरी प्रदर्शन की यह व्यवस्था चलती रहती है।

गवरी प्रदर्शन का यह गाँव वही गाँव होता है, जहाँ गवरी वाले गाँव की बहिन बेटी रहती हो। गवरी वालों के खानेपीने की व्यवस्था गाँव वाले करते हैं। साथ ही व्यक्तिगत व्यक्तिगत भेंट भी दी जाती है। व्यक्तिगत भेंट इस गाँव में रह रहे समधी की ओर से नक्काशी में रहे रहे समधी को दी जाती है। यह भेंट पोशाक से लेकर अनाज, पशु, गहना अथवा नगदी आदि कोई रूप लिए होती है।



राई बूड़िया : गवरी का नायक 'बूड़िया' तथा उसकी दो नायिकाएँ 'राई' होती हैं। महिलाएँ राई बूड़िया का स्वागत फूल-मालाओं तथा नारियल आदि से करती हैं।

वैसे गवरी के सभी खेल्ये पूरे गवरी समय तक एक ही समय भोजन करते हैं। नग्न पौंछ चलते हैं। शराब, मांस, हरी सब्जी तथा नवान्न नहीं लेते हैं। रात्रि भोजन भी निषेध रहता है। जमीन पर सोते हैं तथा नहाना-धोना भी वर्जित होता है। कई गवरियों में नायक बूड़िया को केवल दूध ही लेता देखा गया।

गवरी समाप्ति के पूर्व के दो दिनों में से पहला दिन घड़ावण का तथा दूसरा वळावण का होता है। घड़ावण के दिन गवरी नहीं खेली जाकर सभी लोग कुम्हार के गाँव पहुँचते हैं जहाँ से मिट्ठी का बना बड़ा ही कलात्मक हाथी लेकर जुलूस के रूप में अपने गाँव ले जाया जाता है। इस हाथी को विविध रंगों से मांडा जाता है। ऊपर देवी गौरज्या बिठाई जाती है। भीली मान्यता के अनुसार इस दिन सभी देवी देवता उनके साथ रहते हैं।

दूसरे दिन वळावण की रस्म पूरी की जाती है। इसमें दिन भर खूब गवरी रही जाती है और संध्या को हाथी की विशेष सवारी के साथ पास के जलाशय या नदी—नाले में पहुँचकर उस हाथी को पानी में विसर्जित कर दिया जाता है। विसर्जन से पूर्व हाथी की बड़ी पूजा—मानता की जाती है। गन्ना, भूंझु, ककड़ी, संब्जी, फल आदि चढ़ाये जाते हैं।

इस क्रिया के बाद सभी लोग खेड़ादेवी गौरज्या मंदिर पहुँचते हैं जहाँ गवरी खेलने वालों के रिश्तेदारों की ओर से उन्हें कपड़े, गहने आदि की पैरावणी दी जाती है और चूरमे का प्रसाद बांटा जाता है। इसके बाद सभी लोग नई पैदावार खाना शुरू कर देते हैं।

#### उद्देश्य :

गवरी धारण करने के पीछे मात्र मनोरंजन का उद्देश्य ही नहीं रहा है और न आजीविका उपार्जन की भावना ही दृष्टिगोचर होती है। इसका मुख्य उद्देश्य अपने धार्मिक कर्तव्य की संपूर्ति तथा बाबा भैरवनाथ (शिव) को रिङ्गाकर गाँव की खुशहाली, जाति की सुरक्षा एवं रोग, शोक, दुख, दारिद्र तथा दुर्भिक्ष से छुटकारा पाने का रहा है। नाट्य की समाप्ति के बाद प्रतिदिन भैरव के देवरे पर रात्रि जागरण कर उसकी आराधना में लीन रहने के पीछे भी यही भावना बलवती रूप में देखी जाती है।

#### तत्त्व :

लोकनाट्य मूलतः नृत्य तथा संगीत प्रधान होते हैं। इनका अभिनय पक्ष इतना प्रौढ़ नहीं होता। गवरी में भी नृत्य की ही प्रधानता पाई जाती है। नृत्य के अलावा इसका गीत पक्ष भी बड़ा प्रबल रहा है। पद्यमय संवाद प्रायः गीतों का रूप लिए होते हैं। कुछ स्वांग तो पूर्णतः गीति—स्वांग होते हैं जिनका प्रदर्शन गीत के सहारे ही किया जाता है। ऐसे स्वांगों में शंकर्या प्रधान है। इसका प्रदर्शन शंकर्या गीत पर किया जाता है।

संगीत नाट्य का मूल आधार रहा है तो संपूर्ण खेल को उभारने में सहायक होता है। इसके बिना सारा खेल नीरस तथा निष्ठाण सा लगता है। संगीत की स्वर—लहरी फूटते ही सारा नाट्य विचित्र प्रकार का उबाल, यौवन और उन्माद लिए थिरक उठता है। संक्षेप में नृत्य, गीत, संगीत तथा अभिनय, ये सभी तत्त्व ऐसे हैं, जो गवरी को रूपायित करने में सहायक होते हैं।

#### गवरी का कलात्मक महत्व :

लोकानन्दकारी प्रवृत्तियों में कलात्मक पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। लोकजीवन इनकी ओर स्वतः आकर्षित हो जाता है। यद्यपि लोकनाट्यों की कलाएं बेशास्त्र की कलाएं होती हैं परन्तु फिर भी इनका अपना शास्त्र होता है जो अपने रुद्धरूप में लोक सम्मत होता है। नृत्य—भंगिमाएं, अभिनय—कौशल, संगीत—प्रणाली, संवाद—प्रक्रिया, रूप—सज्जा तथा प्रस्तुतीकरण आदि में लोकजीवन की दैनिक क्रिया कलाएं अभियक्त होती हैं।

इनमें प्रदर्शित मुखौटों की बनावट तथा उन पर की गई कारीगरी लोककला की अप्रतिम झाँकी प्रस्तुत करती है। गवरी नाट्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। इनकी पोशाकें बड़ी कलात्मक सज्जा लिए होती हैं। ये पोशाकें पात्रों की भूमिका के अनुरूप होती हैं। इन्हें धारण कर पात्र अपने को साधारण व्यक्ति से भिन्न अभिनेता अनुभव करता है और सफलता के साथ अपनी भूमिका निर्वाह करता है। वेशभूषा की सानुरूपता अभिनेता के मानसिक धरातल को छूती हुई नाट्य—रूपक को अधिक कला—प्रिय बना देती है। ये पोशाकें सूर्य, चन्द्र, तारे, भूर, परीहा जैसे मांगलिक धार्मिक मांडनों द्वारा मंडित, लोककला की भव्य झाँकी प्रदर्शित करती हैं।

रूपसज्जा भी मानवीय प्रकृति की सहज प्रवृत्ति रही है। आदिवासी जातियों में यह कला अधिक प्रचलित है। यह सज्जा शरीर के विविध अंगों को रंगने, चित्रित करने तथा सजाने—संवारने के रूप में की जाती है। इस सज्जा में मुख—सज्जा का सर्वाधिक महत्व रहा है। अभिनेता का केवल मुख ही एक ऐसा अंग होता है जो उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने में सहायक होता है और जिसकी ओर दर्शकों का सर्वाधिक ध्यान रहता है।

अतः यह मुख—सज्जा अधिकाधिक स्पष्ट तथा इसकी भावाभिव्यक्ति दूर बैठे व्यक्ति में भी आसानी से दिखाई देने वाली होनी चाहिए। इसलिए या तो ये मुख गहरे रंगों में रंग दिए जाते हैं या फिर इन पर मुखौटा लगा दिया जाता है। रंग सज्जा के लिए मुख्यतः चार प्रकार के रंग काम में लाये जाते हैं— काला, नीला, पीला तथा लाल। इन रंगों के मिश्रण से आवश्यकतानुसार और कई प्रकार के रंग तैयार कर लिए जाते हैं। लोक—प्रसाधनों में काजल, मूर्दासिंगी, हल्दी, चूना, आटा, कुंकुम, खड़िया आदि मुख्य हैं। यह सज्जा पात्रों के अनुरूप की जाती है जो लोकसिद्ध होती है। यथा—राक्षस तथा दैत्य—दानवों के लिए गहरा नीला, चोरों के लिए काला, देव—देवियों के लिए लाल तथा जोगी—साधुओं के लिए पीला रंग काम में लाया जाता है। ये सारे कलात्मक अंकन रूढ़िगत होते हैं। गवरी पात्रों की अलंकरण कला भी उल्लेख्य रही है।

#### गवरी का सांस्कृतिक महत्व :

लोकजीवन के सांस्कृतिक उन्नयन में लोकनाट्यों का उल्लेखनीय योग रहा है। इस दृष्टि से गवरी नाट्य का विशेष महत्व है। इसमें न केवल मानव संस्कृति अपितु देव, दानव तथा पशु संस्कृति भी अपनी पूर्ण स्वच्छन्दता के साथ प्रकट हुई है। इन संस्कृतियों के

समन्वय ने जहाँ वर्ग और वर्ग-भेद की दृढ़भित्ति को भंजित किया है, वहाँ दानव तथा पशु जीवन की आसुरी, असांस्कृतिक वृत्तियों को अपने सांस्कृतिक संस्कारों द्वारा मंडित कर, उन्हें सुसंस्कृत बनाया है।

भीलों द्वारा रक्षित एवं प्रदर्शित होने पर भीली संस्कृति का इसमें पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ है, पर इसके उदार और व्यापक दृष्टिकोण ने अन्य सभी संस्कृतियों को अपने में आत्मसात कर, सांस्कृतिक भेदभाव तथा ऊंच-नीच जैसी कोई भावना नहीं पनपने दी है। धर्म के प्रति भी इसकी ऐसी ही उदार दृष्टि रही है। यही कारण है कि समग्र रूप में सभी देवों का स्मरण कर, लोकधर्म के उदात्त आदर्श को व्यावहारिक रूप प्रदान किया है। इससे जहाँ उसका यथार्थ रूप उद्घाटित हुआ है वहाँ उसे आदर्श की ओर उन्मुख कर, जड़ और कठोर होने से बचाया है।

गवरी की यह सांस्कृतिक निधि हमारी रुद्धियों, परम्पराओं, श्रुतियों, विश्वासों, मान्यताओं तथा सम्भ्रांत चेतनाओं की एक ऐसी संपत्ति है, जिससे मेवाड़ का लोकजीवन समृद्ध और सुसंस्कृत बना है।

### राजस्थानी लोकजीवन को गवरी नाट्य की देन :

राजस्थानी लोकजीवन को गवरी नाट्य की जो देन रही है, वह कई दृष्टियों से बड़े महत्व की है। इसने जहाँ एक और सामुदायिक जीवन को सुसंगठित, सृदृढ़ तथा सुव्यवस्थित किया है वहाँ आपसी हेलमेल, रागरंग तथा मानवीय जीवन के लोकनुरंजन को एक समानधर्मी मंच पर प्रस्तुत कर, वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श को मूर्तरूप दिया है।

आनंद और उल्लास के अवसरों पर सार्ववर्णिक एवं सार्वधर्मिक रूप में एकत्र हो, स्वच्छन्दतापूर्ण अनुरंजन प्राप्त करने से आत्मा का विकास होता है। मन की ग्रन्थियाँ खुलती हैं। कुंठाएं हल्की होती हैं तथा वैयक्तिक जीवन की सारी प्रवृत्तियाँ समष्टि हित की ओर उन्मुख होती हैं। इससे आसपास का जीवन भी उल्लास, आनन्द एवं स्फूर्तिमय बन पाता है। एक दूसरे के हेलमेल से संस्कृतियों का आदान-प्रदान होता है साथ ही सहानुभूति, सदभावना तथा सहकार जैसे गुणों का विकास होता है।

गवरी नाट्य में इन तत्वों का पूर्णतः दिग्दर्शन मिलता है। इसने जहाँ लोकजीवन को अपने धर्म-कर्म के प्रति आस्थावान बनाया है, वहीं उसकी परम्परा और रुद्धियों को भी पोषित किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि संस्कृति के संगीत, नृत्य, कला आदि प्रत्येक क्षेत्र में, राजस्थानी लोकजीवन को गवरी नाट्य की अक्षुण्ण देन रही है।

### गवरी का परिवर्तित रूप :

समय की धार और बदलते परिवेश ने गवरी को बड़ा प्रभावित किया है। यह पारम्परिक धार्मिक अनुष्ठान अपने-अपने आंचलिक परिवेश से बाहर भी सांस्कृतिक मंचों पर प्रस्तुत होने लगा है। इससे उसके सांस्कृतिक सरोकार गड़-मड़ होने लगे हैं। गवरी

के नाम पर गैर भीलों की प्रस्तुति गावदी ही अधिक लगती है। भीली-संस्कृति का यह रास अपने स्वरूप में हास-विलास ही अधिक हो गया है।

पहले मेवाड़-वागड़ के पूरे इलाके में गवरी होती थी। अब उससे वागड़ छूटता जा रहा है। वहाँ भीली संस्कृति का यह सर्वांग सुन्दर स्वरूप अपने टूटिये रूप में रह कर स्वांगोत्सव ही जैसे रह गया है। अब वहाँ न पूरी गवरी परिलक्षित होती है और न वैसा धार्मिक आचरण ही देखने को मिलता है। नवरात्रा से पूर्व पूरी होने वाली गवरी न जाने कैसे नवरात्रा प्रमुख बन गई।

ड़ॅगरपुर से कोई बीस किलोमीटर दूर सालमगढ़ मार्ग पर गवरी का विसंगत प्रदर्शन देख अफसोस करने की बजाय यह संतोष ही अधिक रहा कि कैसे भी हो, गवरी नाम तो चल रहा है। सीमलवाड़ा पंचायत समिति के जोरावरपुर गाँव में तो होली पर आयोजित गैर के साथ गवरी का जुड़ाव देखने को मिला। यहीं क्यों, कुशलगढ़ की ओर तो घटते-घटते गवरी का मात्र बूड़िया और राई स्वांग बचा रहा जो दीवाली के दूसरे दिन रामासामी करने अंगरेज साब ही अधिक लगा। एक हिस्सा बन गया। यहाँ का बूड़िया, गवरी का हीरो नहीं लगाकर हेट और पतलूनधारी छोटी-छोटी छड़ियाँ लिए नाचते तुमकते घर-दर-घर रामासामी करते चलते हैं।

1967 में जिस गवरी-राई पर मैंने शोध प्रबन्ध लिखा, वह इतनी अदल-बदल जाएगी, यह कल्पना तो मैंने तब ही कर ली थी। अब तो खेल्ये भी नौकरी करने लग गए हैं। राजनीति में आने लग गए हैं। समाज सुधार और शिक्षित सभ्य कहलाने के नाम पर भी कई जगह गवरी का प्रदर्शन बन्द होता देखा गया जो अब पिछड़ेपन में गिना जाने लगा है।

कई जगह, कुछ घटनाएं ऐसी घटीं जिससे गवरी का प्रदर्शन सदा के लिए बंद कर देना पड़ा। उदयपुर के बाठरड़ा की गवरी किसी समय मानी ठानी गवरी थी। एक बार की गवरी में जब बूड़िया बना नायक अपनी मूछों पर ताव दे रहा था तो सामने रावले के गोखड़े से ठाकुर साहब को उसका यह रूप अखर गया। उन्होंने समझ लिया कि वह उन्हीं को चुनौती दे रहा है। उनके रहते गाँव का कोई व्यक्ति इस हरकत पर उत्तर आए तो फिर उनका शासन क्या रहा! फलस्वरूप उन्होंने आव देखा न ताव, अपनी बन्दूक उठाई और बूड़िये को उसका निशाना बना, भड़ीका कर दिया तब से वहाँ की गवरी का नामेनिशान ही मिट गया।

गोगुन्दा तहसील के पूनावली गाँव में तो एक घटना ऐसी घटी कि उसके बाद से वहाँ गवरी ली ही नहीं जाती। गाँव में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार कहा जाता है कि कोई सौ पूर्व यहाँ के राव शिवनाथसिंह ने एकबार किसी कार्य के लिए आदिवासियों को अपने पालना नहीं कर सके। इस पर राव को गुस्सा आया। वह गवरी स्थल पर गया और कलाकारों से आभूषण तथा वस्त्र आदि लेकर रावले के बाहर नीम वृक्ष के नीचे बड़े से खड़े में

गड़वा दिए और ऊपर पथर का बड़ा पाट धरा दिया। तब से यहां गवरी लेने की प्रथा ही समाप्त है। इसी तहसील के सुधार मादड़ा गाँव में भीलों की बस्ती तो है मगर उनकी माताजी का कोई देवरा नहीं होने से यहां गवरी ही नहीं ली जाती अतः बाहर की गवरी बुलानी पड़ती है।

किसी समय बड़ी प्रभावी रही गवरी ने उन नाट्य प्रयोगियों को अवश्य प्रेरणा दी जिन्होंने इसके रंगमंडल को लेकर आधुनिक नाट्य विधा को नया आयाम दिया। इससे प्रयोगधर्मी बने विविध नाट्य-रूप दर्शकों में बड़े चर्चित भी रहे।

अब गवरी के बदलते बूँड़िये को होली या दीवाली या नवरात्रा में देख कोई उसके उद्भव को, उपजीव्य को, कथा—सूत्र को, लीला—वैविध्य को कैसे कहां से खोज निकालेगा और पूरी गवरी के कथा—तंत्र को कैसे शिल्प सज्जित करेगा!।



गवरी का विहंगम दृश्य

#### सन्दर्भ ग्रन्थ :

- विशेष जानकारी हेतु द्रष्टव्य लेखक की कृति—लोक नाट्य गवरी : उद्भव और विकास, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, 1970.
- शिव-भस्मासुर विषयक आख्यान भगवत पुराण, शिव पुराण, ब्रह्म वैवर्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि में बड़ा विस्तार लिये मिलता है। इनमें प्राप्त आख्यान के सूत्र गवरी में भिन्न रूप लिये हैं। इससे लोकजीवन में रथीपली घटना के महत्व का अच्छा अध्ययन हो सकता है। ब्रह्म वैवर्त पुराण के प्रकृति खंड में नायक शंखचूड़ का उल्लेख द्रष्टव्य है। यही शंखचूड़ धीरे—धीरे अपना नाम घटित करता 'चूड़' रह गया हो और चूड़ से होते—होते 'बूड़' बन गवरी में बूड़ से 'बूँड़िया' बन गया हो; यह गहरे अध्ययन का विषय है।